2022, 8 एस.सी.आर. 93

मेसर ग्रीशेम जीएमबीएच

(अब एआईआर लिक्विड ड्यूट्सलैण्ड जीएनबीएच कहा गया)

वि.

गोयल एमजी गैसेज प्राय. लिमि.

(सिविल अपील क्रमांक 521/2022)

28 जनवरी 2022

ख्न्यायमूर्तिगण अजय रस्तोगी एवं अभय एस. ओका,

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1900: धारा 44क– व्यतिकारी राज्य क्षेत्रों के न्यायालयों द्वारा पारित डिक्रियों का निष्पादन– विदेशी न्यायालय जिसे व्यतिकारी राज्य क्षेत्र का वरिष्ठ न्यायालय के रूप में अधिसूचित किया गया है, अर्थात यूनाईटेड किंगडम ग्रेट ब्रिटेन एवं उत्तरी आयरलैण्ड अन्तर्गत धारा 44क के धन की डिक्री (20 लाख रूपये/– से अधिक) का निष्पादन– उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा निष्पादन स्वीकार किया गया, हालांकि, खण्ड पीठ द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि उच्च न्यायालय धारा 44क के संदर्भ में जिला न्यायालय न होने से, निष्पादन याचिका को सुनने की क्षेत्राधिकारिता निहित नहीं रखता था एवं जिला न्यायाधीश के न्यायालय में अंतरण किये जाने हेतु निर्देशित किया गया– अपील किये जाने पर, अभिनिर्धारित किया गया: इंग्लैण्ड के उच्च न्यायालय की डिक्री व्यतिकारी राज्य क्षेत्र के वरिष्ठ न्यायालय की डिक्री के रूप में मानी जायेगी– धारा 2(4) जो 'जिला' को परिभाषित करता है एवं धारा 44क जो ''जिला न्यायालय'' को संदर्भित करता है, के संयुक्त पठन किये जाने पर, यह स्पष्ट होता है कि आरंभिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय की अधिकारिता की स्थानीय सीमाऐं अभिप्रेत हैं और इसके अन्तर्गत उच्च न्यायालय की मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता की स्थानीय सीमाऐं आती हैं– लेकिन जहां समय–समय पर अधिसूचित धन संबंधी मूल्य के आधार पर विभाजित अधिकारिता, वहां जिला अदालत या उच्च न्यायालय अपने मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता में डिक्री के निष्पादन के लिये शक्ति का प्रयोग करने में सक्षम हैं– उच्च न्यायालय की मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता सदैव आर्थिक सीमाओं के आधार पर प्रयोग किया जाता है– एक बार दिये गये समय पर धन संबंधी अधिकारिता 20 लाख रूपये से अधिक हो चुकी थी जो कि उच्च न्यायालय द्वारा अधिनियम 1966(बाद में जिसे अधिसूचना दिनांक 10 अगस्त, 2015 (डब्लू.ई.एफ 26 अक्टूबर, 2015) धन संबंधी अधिकारिता को संशोधित कर 02 करोड रूपये कर दिया गया है) की धारा 5(2) के अन्तर्गत अधिसूचित, यह दिल्ली उच्च न्यायालय है जिसने संहिता की धारा 44क के तहत एक विदेशी डिक्री को निष्पादन करने के लिये– अतः उच्च न्यायालय की खण्डपीठ का निर्णय अमान्य एवं रद्द किया गया– दिल्ली उच्च न्यायालय अधिनियम, 1966– धारा 5(2)।

अपील को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया : 1.1 जहाँ तक संहिता की धारा 44ए के तहत परिभाषित "किसी व्यतिकारी राज्य क्षेत्रों के वरिष्ठ न्यायलय " की अभिव्यक्ति का संबंध है, निर्णय और डिक्री को कानून मंत्रालय द्वारा 1 मार्च, 1953 को जारी अधिसूचना के माध्यम से संहिता की धारा 44ए के अर्थ के अंतर्गत पारस्परिक क्षेत्र, अर्थात् यूनाइटेड किंगडम ऑफ ग्रेट ब्रिटेन और उत्तरी आयरलैंड के अधिसूचित वरिष्ठ न्यायालय द्वारा पारित किया गया है, इस प्रकार इसमें कोई संदेह नहीं है कि इंग्लैंड के उच्च न्यायालय की डिक्री को पारस्परिक क्षेत्र का श्रेष्ठ न्यायालय माना जायेगा। [पैरा 23] [103–ए–बी]

1.2 'जिला' शब्द को संहिता की धारा 2 (4) के अंतर्गत परिभाषित किया गया है और 'जिला न्यायालय' शब्द को धारा 44ए के तहत संदर्भित किया गया है हालांकि वह उसके अंतर्गत परिभाषित नहीं है, लेकिन प्रावधान के संयुक्त पढ़ने पर यह स्पष्ट होता है कि आरंभिक आधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायलय की (जिसे इसमें इसके पश्यत जिला न्यायलय कहा गया है)आधिकारिता की स्थानीय सीमाएं अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत उच्च न्यायलय की मामूली आरंभिक सिविल आधिकारिता की स्थानीय सीमाएं शामिल हैं और यह विवादित नहीं है कि आरंभिक आधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायलय सामान्य रूप से एक जिला न्यायालय होता है (नामपद्धति में जो भी परिवर्तन हो) और उच्च न्यायालय का मामूली आरंभिक सिविल आधिकारिता का प्रयोग करने वाले भारत में बहुत अधिक नहीं हैं, लेकिन जहां समय–समय पर अधिसूचित धन सम्बन्धी मूल्य के आधार पर विभाजित अधिकारिता है, वहां जिला अदालत या उच्च न्यायालय अपने मामूली आरंभिक सिविल आधिकारिता में डिक्री के निष्पादन के लिए शक्ति का प्रयोग करने में सक्षम है, जिसमें विदेशी न्यायालय की धन डिक्री भी शामिल है, बशर्ते कि अन्य शर्तों का अनुपालन संहिता की धारा 44ए के तहत किया जाए। [पैरा 25] [105–सी–एफ]

1.3 धारा 44ए के अंतर्गत व्यतिकारी राज्य क्षेत्रों के वरिष्ठ न्यायलयों द्वारा पारित डिक्रियों का निष्पादन के प्रावधान है। इसमें, अन्य बातों के साथ–साथ, यह निर्धारित किया गया है जहां किसी व्यतिकारी राज्य क्षेत्रों के वरिष्ठ न्यायलयों में से किसी की डिक्री की प्रमाणित प्रति किसी जिला न्यायलय में फाइल की गयी है वहां उस डिक्री का भारत में निष्पादन ऐसे किया जा सकेगा मानो वह उस जिला न्यायलय द्वारा पारित किया गया हो। तक वह डिक्री तुष्ट या समायोजित की गयी है , और ऐसा प्रमाण पत्र इस धरा के अधीन की कार्यवाहियों के प्रयोजनों के लिए ऐसी तुष्टि या समायोजन के विस्तार का निश्चयक सबूत होगा धारा 44ए के उपधारा (3) यह अतिरिक्त दर्शाता है की धारा 47 के उपबंध इस धारा के अधीन डिक्री का निष्पादन करने वाले जिला न्यायलय की कार्यवाहियों को उस डिक्री की प्रमाणित प्रति के फाइल किये जाने के समय से लागु होंगे और यदि जिला न्यायलय को समाधानप्रध रूप में यह दर्शित क्र दिया जाता है की डिक्री धारा 13 के खंड (क) से खंड (च) तक में विनिद्रिष्ट अपवादों में से किसी में आती है तो वह न्यायलय ऐसी डिक्री का निष्पादन करने से इंनकार कर देगा ।

1.4 उच्च न्यायलय की मामूली आरंभिक सिविल आधिकारिता सदैव आर्थिक सीमाओं के आधार पर प्रयोग किया जाता है। संहिता की धारा 44ए में यह पढ़ना असंभव होगा कि भले ही सिविल कोर्ट का आर्थिक क्षेत्राधिकार प्रतिबंधित है, फिर भी विदेशी डिक्री के निष्पादन के उद्देश्य से, यह उन मामलों के संबंध में जिला अदालत बन जाता है जो उच्च न्यायालय के मामूली आरंभिक सिविल आधिकारिता के अंतर्गत आते है, और सहिंता की धारा 2(4) के तहत परिभाषित अभिव्यक्ति जिले को उसका वास्तविक प्रभाव देना होगा अथवा विदेशी डिक्री के निष्पादन के लिए धारा 44 ए में जिला न्यायालय की अभिव्यक्ति पढ़ें तो , इसे अधिनियम 1966 की धारा 5 (2) के तहत अधिसूचित होने के अनुसार अपनी आर्थिक सीमाओं के संदर्भ में मामूली आरंभिक सिविल आधिकारिता रखने वाली अदालत माना जाएगा।

1.5 अधिनियम 1966 की धारा 5(2) के तहत, उच्च न्यायालय द्वारा अधिसूचित 20 लाख (बाद में 10 अगस्त, 2015 की अधिसूचना के माध्यम से 26 अक्टूबर, 2015 से) आर्थिक सीमा को संशोधित कर रु. 2 करोड़) निर्धारित की गयी धन सम्बन्धी आधिकारिता से अधिक हो गया हो , से उस दशा में, यह दिल्ली का उच्च न्यायालय है जो सहिंता की धारा 44 ए के तहत एक विदेशी डिक्री को निष्पादित करने के लिए मामूली आरंभिक सिविल आधिकारिता के रूप में अपना विशेष क्षेत्राधिकार रखता है और यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि निष्पादन हमेशा कार्यवाही की निरंतरता में होगा ।

1.6 पंजाब न्यायालय अधिनियम 1918 की धारा 24 के अंतर्गत , जिसमें डिवीजन बेंच ने अपना

जोर दिया है, जो दिल्ली पर लागू होती है, जिला न्यायाधीश का न्यायलय ही आरम्भिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायलय होगी। अधिनियम 1966 के 5(1) के तहत, दिल्ली का उच्च न्यायालय ऐसे सभी मूल, अपीलीय और अन्य क्षेत्राधिकारों का प्रयोग करता है जो दिल्ली के केंद्र शासित प्रदेश में पंजाब के उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग किए जाने योग्य थे। अधिनियम 1966 की धारा 5(2) है जो एक गैर–अप्रत्याशित खंड से शुरू होती है जो दिल्ली के उच्च न्यायालय को हर उस मुकदमे में अपने मामूली आरंभिक सिविल आधिकारिता का प्रयोग करने का अधिकार देती है जहां आर्थिक मूल्य सक्षम प्राधिकारी द्वारा अधिसूचित किया गया है। और इस प्रकार, दिल्ली का उच्च न्यायालय वास्तव में एक ऐसे मुकदमे में आरंभिक सिविल आधिकारिता रखता है जहां मूल्य इसकी आर्थिक सीमा से अधिक है और यदि पंजाब न्यायालय अधिनियम की धारा 24 अधिनियम,सहपठित अधिनियम 1966 की धारा 5 (2), दिल्ली के उच्च न्यायालय को बनाएगी, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि कुछ क्षेत्राधिकार जिला अदालत से छीन लिया गया है और दिल्ली के उच्च न्यायालय को प्रदान किया गया है और यह आरंभिक सिविल आधिकारिता केवल उन मुकदमों के संबंध में है जहां आर्थिक सीमाएं अधिसूचित के अनुसार अधिक हैं अधिनियम 1966 की धारा 5 (2) के तहत प्राधिकरण और यथावा यह दिल्ली के उच्च न्यायालय को सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए आरम्भिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय बना देगा ।

1.7 खंड पीठ ने "जिला न्यायालय" अभिव्यक्ति के आधार पर कार्यवाही की, जैसा कि संहिता की धारा 44ए के तहत संदर्भित किया जा रहा है, लेकिन उनके अन्य प्रासंगिक प्रावधानों को संज्ञान नहीं लिया गया है, जिनके बारे में इस निष्कर्ष पर आते हुए एक संदर्भ दिया गया है कि संहिता की धारा 2 (4) के तहत परिभाषित "जिला" अभिव्यक्ति केवल आरंभिक आधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायलय की अधिकारिता की सीमाओं को निर्धारित करती है और जिसमें इसके अंतर्गत उच्च न्यायलय की मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता भी शामिल है तथा जब धन सम्बन्धी आधिकारिता प्रासंगिक क़ानून के तहत अधिसूचित होने से अधिक हो जाता है, तो अधिकारिता विशेष रूप से धारा 44ए के तहत एक विदेशी डिक्री के निष्पादन के लिए एक मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता के रूप में उच्च न्यायालय के पास निहित होता है , जो पार्टियों/निर्णीत ऋणी के लिए उपलब्ध उचित आपत्तियों के अधीन होता है, जैसा कि संहिता की धारा 13 के अंतर्गत परिकल्पित है। [पैरा 30] [107–बी–डी]

1.8 उच्च न्यायालय की खंड पीठ के फैसले को रद्द एवं अमान्य घोषित कर दिया जाता है । चूंकि पार्टियों ने गुण–दोष के आधार पर संबोधित नहीं किया है, इसलिए निष्पादन याचिका को उच्च न्यायालय की खंडपीठ की फाइल पर पुन: स्थापित किया जाता है । यह एक पुराना मामला है जिसमें विदेशी डिक्री को इस समय तक लगभग 16 वर्षों तक निष्पादित नहीं किया जा सका , इसलिए डिवीजन बेंच को इस मामले को प्राथमिकता के आधार पर लेने और अपने गुण–दोष के आधार पर जल्द से जल्द निर्णय लेने देना उचित है। [पैरा 31] [107–डी–एफ]

राज दरभंगा जनरल मैनेजर विरूध्द कूमर रामापुत सिंह, **(1871–72) 14 एम आई ए 605: 20 ई आर 912– संदर्भ लिया**।

सिविल अपीली अधिकारिताः सिविल अपील क्रमांक 521/2022

ई.एफ.ए.(ओ.एस.) क्रमांक 3/2014 में नई दिल्ली में उच्च न्यायालय दिल्ली द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 01.07.2014 से।

अपीलार्थी की ओर से अधिवक्तागण वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ0 ए.एम. सिंघवी, मिस मोहना एम. लाल, मिस गीताली तालुकदार, जॉयदीप बरदोलयी।

प्रत्यर्थी की ओर से अधिवक्तागण, वरिष्ठ अधिवक्ता राकेश द्विवेदी, मिस अरूणा गुप्ता, सिमरन मेहता, अभिषेक पुरी।

न्यायमूर्ति रस्तोगी द्वारा निर्णय दिया गया।

1. अनुमति दी गयी।

2. अपीलार्थी/डिक्रीधारी द्वारा दिल्ली उच्च न्यायालय की डिवीजन बैंच के निर्णय दिनांक 01.07.2014 जो कि धन की डिक्री दिनांक 07 फरवरी 2006 (20 लाख रूपये से अधिक) के निष्पादन के संबंध में विदेशी न्यायालय में निर्विवादित रूप से व्यतिकारी राज्य क्षेत्र के वरिष्ठ न्यायालय के रूप में अधिसूचित किया गया है, धारा 44क सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (जिसे पश्चातवर्ती क्रम में संहिता से संबोधित किया जा रहा है) को ध्यान में रखते हुये जिला न्यायालय के समक्ष याचिका दायर करने, को चुनौती दी गयी है।

3. यह एक पुरानी कहावत है कि भारत में पक्षकार की कठिनाईयां तब प्रारंभ होती हैं, जब वह डिक्री प्राप्त कर लेता है। डिक्री के निष्पादन में डिक्रीधारी को आने वाली कठिनाईयों को लेकर इस बुराई को 1872 में प्रीवि काउंसिल द्वारा भी पाया गया था (एमआईए पी.612)। एक सदी से अधिक समय के पश्चात भी, डिक्रीधारी को अभी भी उसी समस्या का सामना करना पड़ता है, जो कि अतीत में भी करना पड़ता था, उसमें कोई सुधार नहीं हुआ है। न्यायालय के समक्ष आने वाले पक्षकार को जब वह अपना मामला स्थापित करने में सफल हो जाता है, तब उसे कागजी डिक्री प्राप्त करने में कोई रूचि नहीं होती है। वह मुख्य रूप से न्यायालय से जो चाहता है, वह राहत है एवं यदि यह एक धन की डिक्री है, तो वह चाहता है कि डिक्री के संदर्भ में वह जिस धन का हकदार है, उसे निर्णीत ऋणी द्वारा संहिता या कानून के अन्तर्गत उपबंधित प्रावधनों, उपलब्ध युक्तियुक्त प्रतिबंदों/अधिकारों को ध्यान में रखते हुये यथाशीघ्र संतुष्ट किया जाना चाहिये।

4. त्वरित मामला हमारे समक्ष एक जीवित उदाहरण है, जिसमें डिक्रीधारी एक विदेशी न्यायालय की धन की डिक्री जिसे व्यतिकारी राज्य क्षेत्र का वरिष्ठ न्यायालय अधिसूचित किया गया था, प्राप्त करने हेतु दिनांक 07 फरवरी, 2006 को समर्थ था, और 16 वर्षों के पश्चात भी, परदा धुंधला है और स्थिति अस्पष्ट बनी हुयी है कि वह कौन सा फोरम है, जहां वह डिक्री के निष्पादन के लिये जा सकता है।

5. अभिलेख से निकाले गये संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि अपीलार्थी द्वारा क्वींस बैंच , उच्च न्यायालय, कमर्शियल न्यायालय, यूनाईटेड किंगडम (इंग्लिश कोर्ट) जो कि व्यतिकारी राज्य क्षेत्र का वरिष्ठ न्यायालय (अर्थात, यूनाईटेड किंगडम ग्रेट ब्रिटेन एवं उत्तरी आईलैण्ड) जिसे संहिता की धारा 44क के अंतर्गत कानून मंत्रालय द्वारा जारी अधिसूचना क्रमांक एसआरओ 399 दिनांकित 01 मार्च, 1953 जो कि जीएसआर 201 दिनांकित 13 मार्च, 1958 द्वारा संशोधित कर अधिसूचित किया गया है।

6. पूर्व में, दिनांक 06 फरवरी, 2003 को यूके अदालत में प्रत्यर्थी/निर्णीतऋणी की अनुपसंजाति के कारण व्यतिकारी डिक्री पारित की गयी। अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी को एक समापन नोटिस जारी किया गया था, जिसके द्वारा निर्णय दिनांक 06 फरवरी, 2003 के संबंध में व्यतिकारी डिक्री होने की आपत्ति की गयी थी। प्रत्यर्थी द्वारा किये गये आपत्ति का खंडन करने के लिये, अपीलार्थी द्वारा अंग्रेजी न्यायालय के समक्ष व्यतिकारी डिक्री को रद्द कराने एवं मामले के गुण–दोष पर डिक्री पारित किये जाने का निवेदन किया गया है। इस प्रक्रम पर, प्रत्यर्थी उपस्थित हुआ एवं अंग्रेजी न्यायालय द्वारा निर्णय एवं डिक्री दिनांक 07 फरवरी, 2006 के माध्यम से मूल धन यूएस $ 5, 824, 564.74 की धन की डिक्री प्रदान की गयी।

7. यह प्रासंगिक है कि प्रत्यर्थी द्वारा निर्णय एवं डिक्री दिनांक 07 फरवरी, 2006 के विरूद्ध कोई

अपील प्रस्तुत नहीं की गयी एवं उक्त फैसला अंतिम फैसला हो गया है।

8. दिनांक 27 अप्रैल, 2006 को दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष निष्पादन याचिका दायर करने के समय निर्विवादित रूप से कुल डिक्रीटल राशि 20 लाख रूपये से अधिक थी, जो कि दिल्ली उच्च न्यायालय अधिनियम, 1966 (जिसे पश्चातवर्ती क्रम में ''अधिनियम 1966'' से संबोधित किया जा रहा है) की धारा 5(2) के संदर्भ में धन संबंधी सीमाओं के भीतर थी, जिसे बाद में, आरंभिक अधिकारिता वाले प्रधान न्यायालय के रूप में निष्पादन याचिका की सुनवायी के लिये वर्ष 2015 में बढ़ाकर 02 करोड़ रूपये कर दिया गया था।

9. अपीलार्थी द्वारा यह अभिकथित किया गया है कि डिक्रीटल राशि, यदि दिनांक 20 जनवरी, 2022 को आंकलन कर आंकी जाती है तो यह राशि लगभग 99 करोड़ हो सकती है।

10. अपीलार्थी द्वारा धन की डिक्री के निष्पादन हेतु दिल्ली उच्च न्यायालय में दिनांक 27 अप्रैल, 2006 को याचिका दायर की गयी। प्रत्यर्थी द्वारा दिनांक 17 जनवरी, 2007 को निष्पादन याचिका का जवाब कई आपत्तियां उठाते हुये, जो कि उसे संहिता की धारा 13 के तहत उपलब्ध थीं, प्रस्तुत किया गया। कुछ समय पश्चात, अग्रेतर, यह आपत्ति उठायी गयी कि दिल्ली उच्च न्यायालय को संहिता की धारा 44क को ध्यान में रखते हुये निष्पादन याचिका को सुनवायी में लेने की कोई क्षेत्राधिकारिता नहीं है।

11. उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा प्रारंभिक आपत्तियों को निष्प्रभावी करते हुये एवं गुण–दोष पर अन्य आपत्तियों को निराकृत करते हुये निष्पादन याचिका को निर्णय दिनांक 29 नवम्बर, 2013 के माध्यम से निराकृत करते हुये यह अभिनिर्धारित किया गया कि अंग्रेजी न्यायालय द्वारा 20 लाख से अधिक मूल्य की धन की डिक्री दिनांक 07 फरवरी, 2006, एक समय पर अर्थात, 27 अप्रैल, 2006 (जिस दिन निष्पादन याचिका दायर की गयी) के संबंध में दिल्ली उच्च न्यायालय को सामान्य प्रारंभिक सिविल अधिकारिता की अनन्य अधिकारिता रखता है। निर्णय का प्रवर्तनशील भाग इस प्रकार हैः–

ई.ए. क्रमांक 653/2009

69. यह आवेदन डीएच द्वारा जेडी को साहिबाबाद सम्पत्ति के स्वामित्व के मूल विलेखों को जमा करने के निर्देश देने के लिये है।

70. दर्शित किये गये कारणों के लिये, आवेदन स्वीकार किया गया एवं जेडी को सम्पत्ति, जिसका क्षेत्रफल 18774 गज, के स्वामित्व के मूल विलेखों को जमा करने के लिये निर्देश जारी किया गया। 8/7, स्थल प्टए साहिबाबाद, औद्योगिक क्षेत्र, साहिबाबाद, जिला गाजियाबाद में दो सप्ताह के भीतर न्यायालय में और जब उक्त विलेख जमा किये जाते हैं, तो उन्हें न्यायालय द्वारा एक सील बंद लिफाफे में रखा जायेगा। मूल स्वामित्व के विलेखों के प्रस्तुत किये जाने के समय, जेडी डीएचके विद्वान अधिवक्ता को छायाप्रति प्रदान करेगा।

ई.ए. क्रमांक 654/2009

71. इस आवेदन के माध्यम से, डीएच एक स्पष्टीकरण चाहता है कि गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश में सम्पत्ति पर गृहणाधिकार जारी करने वाले न्यायालय द्वारा दिनांक 03 नवम्बर, 2009 को पारित आदेश को प्रबंध निदेशक(एमडी) या जेडी के किसी अन्य सक्षम निदेशक पर सशर्त बनाया जाना चाहिये, जो एक लिखित वचन देता है कि गाजियाबाद की सम्पत्ति सभी बाधाओं से मुक्त हैं एवं अग्रेतर भारतीय स्टेट बैंक('एससीबाई') से वस्तुओं एवं अस्तियों के बंधक के समझौते के खंड 11 के तहत कोई लिखित सहमति की आवश्यकता नहीं है।

72. दिनांक 20 नवम्बर, 2009 को इन दोनों आवेदनों में नोटिस दिये जाने के पश्चात भी, इस आवेदन का कोई जवाब दायर नहीं किया गया है।

73. परिणामस्वरूप, आवेदन स्वीकार किया जाता है एवं जेडी के एमडी/अधिकृत निदेशक को निर्देश जारी किया गया कि शपथ पत्र इस न्यायालय में दो सप्ताह के भीतर स्पष्ट करते हुये कि (क) साहिबाबाद, गाजियाबाद में स्थित सम्पत्ति सभी बाधाओं से मुक्त हैं या आदेश की तारीख दिनांक 03 नवम्बर, 2009 के भार से मुक्त हैय (ब) करार दिनांकित 24 नवम्बर, 2008 के खण्ड 11 के तहत एसबीआई से वस्तुओं एवं अस्तियों के बंधक को जेडी द्वारा 27 अप्रैल, 2006 को न्यायालय में दिये गये कथन के संदर्भ में उक्त साहिबाबाद सम्पत्ति के संबंध में उक्त आदेश को लागू करने के लिये कोई लिखित सहमति आवश्यक नहीं है एवं (सी) यह कि, आज दिनांक को साहिबाबाद की सम्पत्ति पर कोई भार/गृहणाधिकार इत्यादि, नहीं है।

74. आवेदन निराकृत कर दिया गया है।

12. दिनांक 29 नवम्बर, 2013 को दिल्ली उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय को प्रत्यर्थी–निर्णीऋणी द्वारा उच्च न्यायालय की खण्डपीठ के समक्ष चुनौती दी गयी।

13. उच्च न्यायालय की खण्डपीठ द्वारा तथ्यों एवं परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुये, संहिता की धारा 44क के संदर्भ में अपनी आरंभिक अधिकारिता का प्रयोग करते हुये और पक्षों की सुनवायी के पश्चात, इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिये कि धारा 44क एक विदेशी डिक्रीधारी को भारत में अपनी डिक्री को लागू करने के लिये प्रदत्त एक स्वतंत्र अधिकार है, अंग्रेजी न्यायालय के दिनांक 07 फरवरी, 2006 के धन की डिक्री को निष्पादित करने में दिल्ली उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार तक सीमित करने वाले एक विवाद की जांच करना उचित समझा। यह कार्यवाही का एक नवीन वाद हेतुक है एवं इसका क्षेत्राधिकार के विवादों से कोई संबंध नहीं है। संहिता की धारा 44क की प्रक्रिया, संहिता की धारा 39(3) के तहत प्रदान की गयी घरेलू निष्पादन की प्रक्रिया से पूर्णतः भिन्न है एवं अंत में यह अभिनिर्धारित किया गया कि दिल्ली उच्च न्यायालय संहिता की धारा 44क के तहत जिला न्यायालय नहीं होने से, निष्पादन याचिका पर विचार करने के लिये अधिकार क्षेत्र में निहित नहीं है एवं निर्देश दिया गया कि जिला न्यायाधीश के न्यायालय को अंतरित किया गया, जिसके अधिकार क्षेत्र के भीतर संजित की जाने वाली सम्पत्ति विधि अनुसार निराकृत किये जाने के लिये स्थित है, जो अपील में चुनौती का विषय है।

14. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ0 अभिषेक मनू सिंघवी द्वारा यह दलील प्रस्तुत की गयी कि व्यतिकारी राज्य क्षेत्र के विदेशी न्यायालय की डिक्री के निष्पादन का क्षेत्राधिकार दिल्ली उच्च न्यायालय में निहित है, शर्त यह है कि धन की डिक्री का मूल्य अधिनियम 1966 की धारा 5(2) के तहत धन संबंधी सीमा से अधिक हो।

15. विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे यह दलील प्रस्तुत की गयी कि यह निर्विवादित है कि निर्णय एवं डिक्री दिनांक 07 फरवरी, 2006 व्यतिकारी राज्य क्षेत्र के अधिसूचित वरिष्ठ न्यायालय, अर्थात यूनाईटेड किंगडम ग्रेट ब्रिटेन एवं उत्तरी आयरलैण्ड जो कि संहिता की धारा 44क के अंतर्गत जिसके संदर्भ में कानून मंत्रालय द्वारा दिनांक 01 मार्च, 1953 को अधिसूचना जारी की गयी थी, के द्वारा पारित किया गया है। दिल्ली उच्च न्यायालय में भी सामान्य आरंभिक सिविल अधिकारिता के निहित है, जो कि अधिनियम 1966 की धारा 5(2) के तहत अधिसूचित की जा रही धन संबंधी सीमाओं के अधीन है एवं धारा 44क में यह पढ़ना असंभव होगा कि यद्यपि सिविल न्यायालय (जिसमें धन संबंधी अधिकारिता का अभाव है) की धन संबंधी अधिकारिता प्रतिबंधित है, मात्र विदेशी डिक्री के निष्पादन के प्रयोजन के लिये, जो मामले उच्च न्यायालय के सामान्य सिविल अधिकारिता के हैं, जिला न्यायालय हो जाता है एवं जब शहरों जैसे दिल्ली, कोलकाता, चेन्नई एवं मुम्बई में विभाजित अधिकारिता होती है, तब उच्च न्यायालय को प्रधान सिविल आरंभिक अधिकारिता न्यायालय के रूप में सम्मिलित किया जाना चाहिये जहां यह अपने धन संबंधी अधिकारिता से अधिक है, जैसा कि हस्तगत मामले में अधिनियम 1966 की धारा 5(2) में विचार में लिया गया है।

16. विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे दलील दी गयी कि दो या दो से अधिक न्यायालय हो सकते हैं, जो समवर्ती रूप से प्रधान आरंभिक अधिकारिता के सिविल न्यायालय हैं, जो कि अधिनियम 1966 की धारा 5(2) के अन्तर्गत धन संबंधी सीमाओं के अधीन हैं। यदि ऐसा है, यदि धन संबंधी अधिकारिता जो कि अधिनियम में अधिसूचित/निर्धारित से अधिक है, तो यह दिल्ली का उच्च न्यायालय अधिनियम 1966 की धारा 5(2) के तहत परिभाषित प्रधान आरंभिक अधिकारिता के सिविल न्यायालय माना जायेगा एवं निष्पादन

याचिका वाद कार्यवाहियां की निरंतरता होने से, उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा यह अभिनिर्धारित करने में एक स्पष्ट त्रुटि की है कि दिल्ली उच्च न्यायालय संहिता की धारा 44 क के संदर्भ में परिभाषित जिला न्यायालय के रूप में निष्पादन याचिका पर विचार करने के क्षेत्राधिकार में निहित नहीं है।

17. वहीं दूसरी ओर, प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता मिस्टर राकेश द्विवेदी द्वारा चुनौती दिये गये निर्णय में दर्ज किये गये निष्कर्ष का समर्थन करते हुये यह दलील प्रस्तुत की कि धारा 44 क विदेशी डिक्रीधारी को उसकी डिक्री को भारत में प्रवर्तन कराये जाने हेतु प्रदत्त किया गया स्वतंत्र अधिकार है एवं संहिता की धारा 44 क में उपबंधित प्रक्रिया संहिता की धारा 39(3) के अन्तर्गत प्रदान की गयी प्रक्रिया से भिन्न है। घरेलू डिक्री या तो उसे पारित करने वाले न्यायालय द्वारा या उस न्यायालय द्वारा, जिसे वह निष्पादन के लिये भेजी गयी है, निःसंदेह निष्पादित की जा सकती है। जहां तक विदेशी डिक्री के निष्पादन का संबंध है, संहिता की धारा 44 क के अन्तर्गत प्रदत्त किये गये स्वतंत्र अधिकार से उक्त प्रक्रिया शासित होती है, जिसमें स्पष्टतः जिला न्यायालय को अनन्य अधिकारिता प्रदत्त की गयी है एवं निष्पादन करने वाले न्यायालय की क्षमता को अनिर्वाय करने वाले शब्द, जिसमें डिक्री पारित की गयी थी, इस प्रावधान में, उनके अभाव में स्पष्ट हैं।

18. अधिक विशिष्ट होने के लिये, विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह दलील प्रस्तुत की गयी कि संहिता की धारा 44 क एक स्वतंत्र एवं सक्रिय प्रावधान की प्रकृति का है, जो डिक्रीधारी को एक नवीन एवं नया वाद हेतुक प्रदान करता है, चाहे उस कारण का मूल स्वरूप कुछ भी हो जिसमें डिक्री पारित की गयी थी।

19. विद्वान अधिवक्ता आगे दलील प्रस्तुत करते हैं कि जहां तक डिक्रीटल राशि के बाद का वाद सुनवायी की धन संबंधी सक्षमता का संबंध है, यह संहिता की धारा 38 एवं 39 के तहत निर्दिष्ट निष्पादन के लिये घरेलू डिक्री के संदर्भ मंे हो सकता है एवं एक बार धारा 44 क जिला न्यायालय को अनन्य क्षेत्राधिकार प्रदान करती है, जिसमें विदेशी न्यायालय की धन डिक्री को निष्पादन के लिये दायर किया जाना है, जिला न्यायालय के अतिरिक्त अन्य कोई न्यायालय विदेशी डिक्री के निष्पादन के लिये सक्षम नहीं है।

20. विद्वान अधिवक्ता आगे दलील प्रस्तुत करते हैं कि अधिनियम 1966 की धारा 5(2) 'सिविल वाद' के लिये एक सीमित सामान्य क्षेत्राधिकार प्रदान करती है एवं निष्पादन कार्यवाहियों को सम्मिलित नहीं करती है। दिल्ली उच्च न्यायालय (संशोधन) अधिनियम, 2003 की धारा 4 ''वाद'' एवं ''अन्य कार्यवाहियों'' के मध्य अंतर करती है एवं प्रस्तुत करती है कि यह मात्र जिला न्यायालय है जो एक मामले को निष्पादित करने के लिये अधिकारिता रखता है एवं विदेशी डिक्री तथा उच्च न्यायालय द्वारा चुनौती दिये गये निर्णय में कोई त्रुटि नहीं की गयी है, जिसमें इस न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता हो सकती हो।

21. हमारे द्वारा पक्षकारों की ओर से विद्वान अधिवक्ता को सुना गया एवं उनकी सहायता से अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया गया।

22. हमारे विचार के लिये जो प्रश्न उत्पन्न होता है वह यह है कि क्या दिल्ली उच्च न्यायालय अपने आरंभिक अधिकारिता का प्रयोग करते हुये एक विदेशी न्यायालय की धन की डिक्री(20 लाख रूपये से अधिक) को निष्पादन करने के लिये एक याचिका पर विचार करने के लिये एक सक्षम न्यायालय है, जिसे संहिता की धारा 44 क के अन्तर्गत व्यतिकारी राज्य क्षेत्र के वरिष्ठ न्यायालय के रूप में अधिसूचित किया गया है।

23. यह विवादित नहीं है कि जहां तक संहिता की धारा 44 क के तहत परिभाषित ''किसी व्यतिकारी राज्य क्षेत्र के वरिष्ठ न्यायालय'' की अभिव्यक्ति का संबंध है, निर्णय एवं डिक्री दिनांक 07 फरवरी, 2006 व्यतिकारी राज्य क्षेत्र के अधिसूचित वरिष्ठ न्यायालय, अर्थात, यूनाईटेड किंगडम, ग्रेट ब्रिटेन एवं उत्तरी आयरलैण्ड, जो कि संहिता की धारा 44 क के अन्तर्गत है, जिसे कानून मंत्रालय द्वारा अधिसूचना दिनांक 01 मार्च,1953 द्वारा जारी किया गया है, द्वारा पारित की गयी है, इस प्रकार कोई संदेह नहीं रह जाता है कि इंग्लैण्ड के उच्च न्यायालय की डिक्री को एक व्यतिकारी राज्य क्षेत्र के वरिष्ठ न्यायालय की डिक्री माना जायेगा।

24. प्रस्तुत की गयी दलीलों का विवेचन करने के लिये, संहिता की योजना एवं अधिनियम 1966 के सुसंगत प्रावधानों पर एक दृष्टि रखना सुसंगत हो सकता है, जो यहां निम्नलिखित पुनः प्रस्तुत किये गये

हैं:–

संहिता की धारा 2(4)– ''जिला''

''जिला'' से आरंभिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय की (जिसे इसमें इसके पश्चात ''जिला न्यायालय'' कहा गया है।) अधिकारिता की स्थानीय सीमाऐं अभिप्रेत हैं और इसके अन्तर्गत उच्च न्यायालय की मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता की स्थानीय सीमाऐं आती हैं।

संहिता की धारा 6– ''धन संबंधी अधिकारिता''

अभिव्यक्त रूप से जैसा उपबंधित है उसके सिवाय, इसकी किसी बात का प्रभाव ऐसा नहीं होगा कि वह किसी न्यायालय को उन वादों पर अधिकारिता दे दे जिनकी रकम या जिनकी विषय–वस्तु का मूल्य उसकी मामूली अधिकारिता की धन संबंधी सीमाओं से (यदि कोई हो) अधिक है।

संहिता की धारा 13– ''विदेशी निर्णय कब निश्चायक नहीं होगा''

विदेशी निर्णय उसके द्वारा उन्हीं पक्षकारों के बीच या उसी हक के अधीन मुकदमा करने वाले ऐसे पक्षकारों के बीच जिनसे व्युत्पन्न अधिकार के अधीन वे या उनमें से कोई दावा करते हैं, प्रत्यक्षतः न्यायनिर्णीत किसी विषय के बारे में वहां के सिवाय निश्चायक होगा जहां–

(क) वह सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय द्वारा नहीं सुनाया गया।

(ख) वह मामले के गुणा–गुण के आधार पर नहीं दिया गया है।

(ग) कार्यवाहियों के सकृत दर्शने स्पष्ट है कि वह अंतराष्ट्रीय विधि के अशुद्ध बोध पर या (भारत) की विधि को उन मामलों में जिनको वह लागू है, मान्यता देने से इंकार करने पर आधारित है।

(घ) वे कार्यवाहियां, जिनमें वह निर्णय अभिप्राप्त किया गया था, नैसर्गिक न्याय के विरूद्ध है।

(ड) वह कपट द्वारा अभिप्राप्त किया गया है।

(च) वह (भारत) में प्रवृत्त किसी विधि के भंग पर आधारित दावे को ठीक ठहराता है।

संहिता की धारा 44क– ''व्यतिकारी राज्य क्षेत्रों के न्यायालयों द्वारा पारित डिक्रियों का निष्पादन''

(1) जहां किसी व्यतिकारी राज्य क्षेत्र के वरिष्ठ न्यायालयों में से किसी की डिक्री की प्रमाणित प्रति किसी जिला न्यायालय में फाईल की गई है वहां उस डिक्री का (भारत) में निष्पादन ऐसे किया जा सकेगा मानो वह उस जिला न्यायालय द्वारा पारित की गयी थी।

(2) डिक्री की प्रमाणित प्रति के साथ ऐसे वरिष्ठ न्यायालय का ऐसा प्रमाण–पत्र फाइल किया जाएगा जिसमें उस विस्तार का, यदि कोई हो, उल्लेख होगा जिस तक वह डिक्री तुष्ट या समायोजित की गयी है, और ऐसा प्रमाण–पत्र इस धारा के अधीन की कार्यवाहियों के प्रयोजनों के लिये ऐसी तुष्टि या समायोजन के विस्तार का निश्चायक सबूत होगा।

(3) धारा 47 के उपबंध इस धारा के अधीन डिक्री का निष्पपादन करने वाले जिला न्यायालय की कार्यवाहियों को उस डिक्री की प्रमाणित प्रति के फाईल किये जाने के समय से लागू होंगे और यदि जिला न्यायालय को समाधानप्रद रूप में यह दर्शित कर दिया जाता है कि डिक्री धारा 13 के खंड(क) से खंड(च) तक में विनिर्दिष्ट अपवादों में से किसी में आती है तो वह न्यायालय ऐसी डिक्री का निष्पादन करने से इंकार कर देगा।

स्पष्टीकरण 1– '' व्यतिकारी राज्यक्षेत्रों'' से भारत के बाहर का ऐसा देश या राज्य क्षेत्र अभिप्रेत है, जिसे केन्द्रीय सरकार इस धारा के प्रयोजनों के लिये राजपत्र में अधिसूचना द्वारा व्यतिकारी राज्य क्षेत्र घोषित करे और ऐसे किसी राज्य क्षेत्र के प्रति निर्देश से ''वरिष्ठ न्यायालय'' से ऐसे न्यायालय अभिप्रेत हैं जो उक्त अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किए जाएं।

स्पष्टीकरण 2– वरिष्ठ न्यायालय के प्रति निर्देश से प्रयुक्त 'डिक्री' शब्द से ऐसे न्यायालय का ऐसी

डिक्री या निर्णय अभिप्रेत है, जिससे अधीन ऐसी धनराशि संदेय है जो करों या समान प्रकृति के अन्य प्रभारों के लिए अथवा जुर्माने या अन्य शस्ति के बारे में संदेय राशि नहीं है, किन्तु किसी भी दशा में इसके अन्तर्गत माध्यस्थम् पंचाट नहीं होगा, यद्यपि ऐसा पंचाट, डिक्री या निर्णय के रूप में प्रवर्तनीय है।

<u>अधिनियम, 1966 की धारा 5– ''दिल्ली उच्च न्यायालय की अधिकारिता''</u>

(1) दिल्ली उच्च न्यायालय के पास, दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र में तत्समय सम्मिलित किये गये क्षेत्रों के संबंध में, ऐसी सभी मूल, अपीलीय एवं अन्य क्षेत्राधिकार होंगे, जिनके अन्तर्गत, नियत दिन से ठीक पूर्व लागू कानून, पंजाब उच्च न्यायालय द्वारा उक्त क्षेत्रों के संबंध में, प्रयोग योग्य हैं।

(2) तत्समय प्रवृत्त किसी भी विधि में किसी वाद के होते हुये भी, दिल्ली उच्च न्यायालय को उक्त राज्य क्षेत्रों के संबंध में प्रत्येक मुकदमें में, जिसका मूल्य 25 हजार रूपये से अधिक है, मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता भी होगी।

25. ''जिला'' शब्द संहिता की धारा 2 (4) के तहत परिभाषित किया गया है एवं ''जिला न्यायालय'' शब्द को संहिता की धारा 44 क के तहत हालांकि परिभाषित नहीं किया गया है, संदर्भित किया गया है, किन्तु प्रावधान के संयुक्त पठन किए जाने पर यह स्पष्ट होता है कि यह एक आरंभिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय (संहिता के प्रावधानों में ''जिला न्यायालय''कहा गया) की स्थानिय सीमा को सन्दर्भित करता है एवं उच्च न्यायालय की मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता की स्थानिय सीमाएं सम्मलित है एवं यह विवादित नही है कि आरंभिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय आमतौर पर एक जिला न्यायालय (नामकरण में जो भी बदलाव के साथ) एवं भारत के मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालय बहुत अधिक नहीं है, किन्तु जहां समय–समय पर अधिसूचित अपने धन संबंधी मूल्य के आधार पर विभाजित अधिकारिता है, जिला न्यायालय या उच्च न्यायालय अपने मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता में डिक्री के निष्पादन के लिये शक्ति का प्रयोग करने में सक्षम है, जिसमें व्यतिकारी अधिकारिता की विदेशी न्यायालय की धन की डिक्री भी सम्मिलित है, शर्त यह है कि संहिता की धारा 44 क के अन्तर्गत अन्य शर्तों का पालन किया जाये।

26. संहिता की धारा 44 क व्यतिकारी राज्य क्षेत्रों में विदेशी न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों में डिक्रियों के निष्पादन का प्रावधान करती है। इसमें अन्य बातों के साथ यह निर्धारित किया गया है कि जहां किसी व्यतिकारी राज्य क्षेत्र के किसी भी उच्च न्यायालय की डिक्री की प्रमाणित प्रतिलिपि जिला न्यायालय में दायर की गयी है तो डिक्री को भारत में निष्पादित किया जा सकता है, जैसे कि इसे जिला न्यायालय द्वारा पारित किया गया हो। डिक्री की प्रमाणित प्रतिलिपि के साथ ऐसे उच्च न्यायालय से एक प्रमाण पत्र दाखिल किया जाना है, जिसमें कहा गया है कि डिक्री किस सीमा तक संतुष्ट या समायोजित की गयी है। ऐसे प्रमाण पत्र इस प्रकार की संतुष्टि या समायोजन की सीमा का निर्णायक प्रमाण है। संहिता की धारा 44 क की उपधारा 3 आगे संहिता की धारा 47 के प्रावधानों को निर्धारित करती है कि संहिता की धारा ऐसी निष्पादन कार्यवाहियों पर लागू होगी एवं न्यायालय ऐसी किसी भी डिक्री के निष्पादन से इंकार कर सकता है, यदि यह न्यायालय के समधान के लिये दर्शित किया जाता है कि डिक्री संहिता की धारा 13 के खंड (च) में विनिर्दिष्ट किसी भी अपवाद के भीतर आती है।

27. उच्च न्यायालय के मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग सदैव धन संबंधी सीमाओं के आधार पर किया जाता है। संहिता की धारा 44 क में यह पढ़ना असंभव होगा कि यद्यपि धन संबंधी अधिकारिता वाले सिविल न्यायालय की अधिकारिता प्रतिबंधित है, किन्तु विदेशी डिक्री के निष्पादन के उद्देश्य से यह उन मामलों के संबंध में जिला न्यायालय बन जाता है जो उच्च न्यायालय के मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता में आते हैं एवं संहिता की धारा 2(4) के अन्तर्गत परिभाषित ''जिला'' अभिव्यक्ति को इसका सही प्रभाव देना होगा। विदेशी डिक्री के निष्पादन के लिये धारा 44 क में ''जिला न्यायालय'' अभिव्यक्ति को पढ़ने के लिये, इसे अधिनियम 1966 की धारा 5(2) के तहत अधिसूचित की जा रही अपनी धन संबंधी सीमाओं के संदर्भ में मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता रखने वाला न्यायालय माना जायेगा।

28. इसमें कोई संदेह नहीं है कि एक बार दिये गये समय पर धन संबंधी अधिकारिता 20 लाख रूपये से अधिक हो चुकी थी जो कि उच्च न्यायालय द्वारा अधिनियम 1966(बाद में जिसे अधिसूचना दिनांक 10 अगस्त, 2015 (डब्लू.ई.एफ 26 अक्टूबर, 2015) धन संबंधी अधिकारिता को संशोधित कर 02 करोड रूपये कर दिया गया है) की धारा 5(2) के अन्तर्गत अधिसूचित, यह दिल्ली उच्च न्यायालय है जिसने संहिता की धारा 44 क के तहत एक विदेशी डिक्री को निष्पादन करने के लिये मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता के रूप में अपना विशेष अधिकार क्षेत्र रखता है और निःसंदेह निष्पादन हमेशा कार्यवाहियों की निरंतरता में होता है।

29. पंजाब न्यायालय अधिनियम, 1918 की धारा 24, जिसमें डिवीजन बैंच ने जोर दिया है कि जो दिल्ली पर लागू होता है कि जिला न्यायाधीश का न्यायालय, आरंभिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय होगा। अधिनियम 1966 की धारा 5(1) के तहत दिल्ली उच्च न्यायालय ऐसे सभी मामूली, अपीलीय एवं अन्य अधिकारिता का प्रयोग करता है, जो केन्द्र शासित प्रदेश दिल्ली में पंजाब उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग किया जा सकता था। फिर, अधिनियम 1966 की धारा 5(2) जो कि एक गैर अप्रत्याशित खंड के साथ प्रारंभ होती है, जो दिल्ली उच्च न्यायालय को प्रत्येक मुकदमें में अपने सामान्य मूल्य नागरिक अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने का अधिकार देती है, जहां धन संबंधी मूल्य सक्षम प्राधिकारी द्वारा अधिसूचित किया जा रहा है एवं इस प्रकार दिल्ली उच्च न्यायालय, वास्तव में, एक ऐसे मुकदमें में आरंभिक सिविल अधिकारिता रखता है जहां मूल्य इसकी धन संबंधी सीमाओं से अधिक है एवं यदि पंजाब न्यायालय अधिनियम 1918 की धारा 24 को अधिनियम 1966 की धारा 5(2) के साथ पढ़ा जाता है तो यह बिल्कुल स्पष्ट है कि निश्चित अधिकारिता जिला न्यायालय एवं दिल्ली उच्च न्यायालय को प्रदत्त है एवं यह आरंभिक सिविल अधिकारिता मात्र उन मुकदमों के संबंध में हैं जहां धन संबंधी सीमा अधिनियम 1966 की धारा 5(2) के अन्तर्गत प्राधिकारी द्वारा अधिसूचित सीमा से अधिक हैं एवं इस प्रकार सभी व्यवहारिक प्रयोजनों के लिये दिल्ली उच्च न्यायालय को आरंभिक सिविल अधिकारिता रखने वाला प्रधान न्यायालय बनायेगा।

30. खण्डपीठ द्वारा ''जिला न्यायालय'' अभिव्यक्ति के आधार पर कार्यवाही की है, जैसा कि संहिता की धारा 44 क के तहत संदर्भित किया जा रहा है किन्तु उक्त न्यायालय द्वारा अन्य सुसंगत प्रावधानों को ध्यान में नहीं रखा है, जिनके बारे में हमारे द्वारा इस निष्कर्ष पर आते हुये एक संदर्भ दिया गया है कि संहिता की धारा 2(4) के तहत परिभाषित ''जिला'' अभिव्यक्ति मात्र आरंभिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय की अधिकारिता की सीमाओं को निर्धारित करती है एवं जिसमें उच्च न्यायालय की मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता भी सम्मिलित है एवं एक बार जब धन संबंधी अधिकारिता सुसंगत कानून के तहत अधिसूचित होने से अधिक हो जाता है तो अधिकारिता विशेष रूप से उच्च न्यायालय के पास धारा 44 क के तहत एक विदेशी डिक्री के निष्पादन के लिये एक मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता के रूप में निहित होता है जो पक्षकारों/निर्णीतऋणी, जैसा कि संहिता की धारा 13 के अन्तर्गत बताये गये हैं, के लिये उपलब्ध न्यायसंगत आपत्तियों के अधीन है।

31. परिणामस्वरूप, अपील सफल हो जाती है एवं तदअनुसार, अनुमति प्रदान की जाती है। उच्च न्यायालय की खण्डपीठ का निर्णय दिनांक 01 जुलाई, 2014 एतदद्वारा अमान्य एवं रद्द किया जाता है। चूंकि पक्षकारों द्वारा गुण–दोष के आधार पर संबोधित नहीं किया गया है इसलिये ई.एफ.ए. (ओ.एस.) क्रमांक 3/2014 दिल्ली उच्च न्यायालय की खण्डपीठ की फाईल पर पुर्नस्थापित किया गया। यह एक पुराना प्रकरण है जिसमें दिनांक 07 फरवरी, 2006 की विदेशी डिक्री लगभग 16 वर्षों तक इस समय तक निष्पादित नहीं की जा सकी है, इसलिये हम यह उचित समझते हैं कि खण्डपीठ इस मामले को प्राथमिकता के आधार पर सुनवायी मे ले एवं इसके लंबे समय से प्रतीक्षित निष्पादन को ध्यान में रखते हुये अपने गुण–दोष पर शीघ्रातिशीघ्र विधि के अनुरूप निर्णय लें, किन्तु किसी भी प्रकार से 04 माह के पश्चात नहीं।

32. लंबित आवेदन(आवेदनों), यदि कोई हो तो उसका निपटारा कर दिया जाता है।

निधि जैन
(सहायक: शास्वत जैन, एलसीआरए)

अपील की अनुमति दी गयी।

अस्वीकरणः– देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकदमेबाज के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जायेगा। समस्त कार्यालयी एवं व्यवहारी प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जायेगा और कार्यान्वयन तथा लागू किये जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जायेगी।

अनुवादक
(हर्ष वर्धन धाकड़)
द्वितीय व्यवहार न्यायाधीश, कनिष्ठ खण्ड
नागौद, जिला सतना, म.प्र.